PROF. (DR) RUKHSANA PARVEEN
HOD, DEPARTMENT OF PSYCHOLOGY
R.R.S. COLLEGE MOKAMA

CLASS – BA PART- II (H), PAPER - IV

FRUDIAN THEORY OF PSYCHOANALYSIS

मनोरोगी से बातचीत करने के ज़रिये उसका उपचार करने की विधि और एक बौद्धिक अनुशासन के रूप में मनोविश्लेषण की स्थापना ज़िग्मण्ड फ़्रॉयड ने की थी। समाज-विज्ञान के कई अनुशासनों पर मनोविश्लेषण का गहरा असर है। स्त्री- अध्ययन, सिनेमा-अध्ययन और साहित्य-अध्ययन ने मनोविश्लेषण के सिद्धांत का इस्तेमाल करके अपने शास्त्र में कई बारीकियों का समावेश किया है। नारीवाद की तो एक शाखा ही मनोवैश्लेषिक नारीवाद के नाम से जानी जाती है। फ़्रॉयड का विचार था कि मनुष्य के अवचेतन को अलग- अलग हिस्सों में बाँट कर उसी तरह से समझा जा सकता है जिस तरह प्रयोगशाला में किसी रसायन का विश्लेषण किया जाता है। अवचेतन का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि मनुष्य को अपने मस्तिष्क के एक हिस्से का ख़ुद ही पता नहीं होता। उसकी अभिव्यक्ति उसके सपनों, बोलते-बोलते ज़बान फिसल जाने और अन्य शारीरिक बीमारियों के रूप में होती है। 1880 के दशक में वियना के एक चिकित्सक जोसेफ़ ब्रेयुर के साथ मिल कर फ़्रॉयड ने बर्था पैपेनहाइम नामक एक महिला के हिस्टीरिया (उन्माद) इलाज किया। मनोविज्ञान के इतिहास में बर्था को उसके छद्म नाम 'अन्ना ओ' के रूप में भी जाना जाता है। जल्दी ही हिस्टीरिया में सेक्शुअलिटी की भूमिका के सवाल पर फ़्रॉयड के बेयुर से मतभेद हो गये। फ़्रॉयड को यकीन था कि मानसिक सदमे की प्रकृति काफ़ी-कुछ सेक्शुअल हो सकती है। इसी तरह के अन्य मरीज़ों का उपचार करने के दौरान हासिल किये गये उनके निष्कर्षों का प्रकाशन 1895 में स्टडीज़ इन हिस्टीरिया के रूप में सामने आया। फ़्रॉयड ने हिस्टीरिया की व्याख्या एक ऐसे दिमाग़ी सदमे के रूप में की जिसे रोगी दबाता रहता है। मनोविश्लेषण द्वारा रोगी को उस सदमे की याद दिलायी जाती है। फ़्रॉयड के बाद मनोविश्लेषण के सिद्धांत का आगे विकास करने का श्रेय ज़ाक लकाँ को जाता है।

फ़्रॉयड को विश्वास था कि मनुष्य अपनी इच्छाओं, यौन-कामनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में नाकाम रहने पर होने वाली तकलीफ़ के एहसास को दबाता है। इस प्रक्रिया में उसके भीतर अपूर्ण कामनाओं के प्रति अपराध-बोध पैदा हो जाता है जिससे कुंठा, आत्मालोचना और एक सीमा के बाद आत्म-हीनता और आत्म-घृणा की अनुभूतियाँ जन्म लेती हैं। यह तमाम कार्य- व्यापार अवचेतन के

भीतर चलता है। यह अवचेतन हमेशा दबा हुआ नहीं रहता और सपनों के रूप में या घटनाओं के प्रति अनायास या तर्कसंगत न लगने वाली अनुक्रियाओं (जैसे तेज़ रक्रतार से कार चलाना या किसी परिजन पर ग़ुस्सा करने लगना) के रूप में सामने आता है।

फ़्रॉयड मानस को तीन भागों (इड यानी कामतत्व, ईगो यानी अहं और सुपर-ईगो यानी पराअहं) में बाँट कर देखते हैं। उन्होंने अहं को यथार्थमूलक और आत्ममोह को जन्म देने वाले दो रूपों में बाँटा है। यथार्थमूलक अहं की मध्यस्थता सुख की तरफ़ धकेलने वाले कामतत्व और यथार्थ का समीकरण विनियमित करती है। इसी के प्रभाव में अपनी कामनाएँ पूरी करने के साथ-साथ व्यक्ति सामाजिक अपेक्षाओं पर भी ख़रा उतरने की कोशिश करता है। पराअहं की हैसियत मानस में माता-पिता सरीखी है और वह कामतत्व और अहं पर अपना हुक्म चलाता है। यही पराअहं बालक को अपने पिता का प्राधिकार स्वीकार करने की तरफ़ ले जाता है। इसके प्रभाव में पुत्र द्वारा माँ को प्राप्त करने की कामना का दमन किया जाता है ताकि इस प्रक्रिया में वह पिता की ही तरह अधिकारसम्पन्न हो सके। पितृसत्ता इस सिलसिले से ही पुनरुत्पादित होती है। फ़्रॉयड की व्याख्या के मुताबिक जीवन और जगत के साथ विविध संबंधों में जुड़ने के लिए पुत्र और माँ के बीच का काल्पनिक सूत्र भंग करना ज़रूरी है और यह भूमिका पिता के हिस्से में आती है। पिता के हस्तक्षेप के तहत पुत्र को माँ के प्रति अपनी यौन-कामना त्यागनी पड़ती है। वह देखता है कि पिता के पास शिश्न है जो माँ के पास नहीं है। उसे डर लगता है कि अगर उसने पिता के प्राधिकार का उल्लंघन किया तो उसे भी माँ की ही तरह ही बधिया होना पड़ सकता है। बधियाकरण की दुश्चिंता (कैस्ट्रेशन एंग्ज़ाइटी) के तहत मातृमनोग्रंथि नामक संकट का जन्म होता है जो फ़्रॉयड का एक और महत्त्वपूर्ण सूत्रीकरण है। मातृमनोग्रंथि का संकट बेटे को माँ का परित्याग करने की तरफ़ ले जाता है। माँ के प्रति अपनी अनकही सेक्शुअल चाहत के इस नकार को फ़्रॉयड ने आदिम आत्म-दमन की संज्ञा दी है। आत्म-दमन के इसी प्रसंग से व्यक्ति के मानस में अवचेतन की बुनियाद पड़ती है।

ज़ाक लकाँ ने फ़्रॉयड द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण पर पुनर्विचार करते हुए सेक्शुअल कामना के दायरे से निकाल कर उसकी प्रतिष्ठा भाषा के दायरे में की। साथ ही उन्होंने आत्ममोह को जन्म देने वाले अहं की बेहतर व्याख्या की जबकि फ़्रॉयड ने इस पहलू पर ज़्यादा ग़ौर नहीं किया था। लकाँ ने देखा कि फ़्रॉयड के मुताबिक मातृमनोग्रंथि का शिकार होते समय बालक बोलने की उम्र में आ जाता है। अर्थात् आदिम आत्म-दमन के आधार पर जब उसके अवचेतन की नींव पड़ रही होती है, उस समय कर्त्ता के रूप में उसके कदम भाषा के प्रदेश में पड़ जाते हैं। यही वह क्षण है जब बच्चा भाषा के ज़रिये कामना के जन्म और दमन से वाकिफ़ होता है। चूँकि कामना कभी पूरी नहीं हो सकती इसलिए वह माँ के रूप में आजीवन अपनी खोयी हुई वस्तु की तलाश करता रहता है। पुत्र और माँ का युग्म तोड़ने के लिए लकाँ ने मिरर- इमेज की भूमिका रेखांकित की है। आईने में

ख़ुद को देख कर अर्थात् अपने ही बिम्ब से साक्षात्कार होते समय उसे माँ के साथ अपने अंतर का एहसास होता है। इस मुकाम तक पहुँचते समय पिता द्वारा बनाये गये नियमों के प्रभाव में भाषा के प्रतीकात्मक संसार में बालक का प्रवेश हो चुका होता है। बिम्बात्मकता से प्रतीकात्मकता में जाने की यह प्रक्रिया लकाँ के अनुसार तीन निर्णायक क्षणों के क्रम में घटित होती है

1. मिरर-इमेज का चरण,
2. भाषा में प्रवेश का चरण और
3. फिर मातृमनोग्रंथि के संकट का दौर।

छह महीने से डेढ़ साल की आयु के बीच माँ बच्चे को जब शीशा दिखाती है तो वह ख़ुद को अलग से पहचान कर अपने एकीकृत और पृथक अस्तित्व से परिचित होता है। लकाँ इसे ही आत्ममोह के क्षण की शुरुआत मानते हैं अर्थात् इसी जगह अहं की आत्ममोह संबंधी किस्म का जन्म होता है और देह प्रेम का लक्ष्य बनती है। लेकिन इसी क्षण एक और घटना होती है। माँ से ख़ुद को भिन्न पा कर वह दो बातें सोचता है। पहली, यह मैं हूँ और दूसरी, मैं माँ के साथ एकमेक न हो कर अन्य हूँ। इसी जगह परायेपन का एहसास जन्म लेता है। बच्चा दर्पण में अपनी जिस छवि को देखता है, वह उसकी सूचक है। पह छवि उसकी इयत्ता न हो कर उसका स्थानापन्न बिम्ब है। लकाँ बताते हैं कि इसीलिए मिरर-इमेज का चरण अहं के विकास की शुरुआत तो बनता है, पर यह बुनियाद एक ऐसी समझ पर रखी जाती है जो यथार्थमूलक नहीं होती।

मनोविश्लेषण की दुनिया में इस बात पर काफ़ी बहस है कि क्या मनोरोगी के मानस तक उससे बातचीत के ज़रिये पहुँचा जा सकता है? क्या मनोरोगी के भीतर मनोचिकित्सक द्वारा की गयी पूछताछ के प्रति प्रतिरोध नहीं होता? इन सवालों का जवाब तलाशने की प्रक्रिया में पैदा हुए मतभेदों के केंद्र में मातृमनोग्रंथि और शिशु-यौनिकता से जुड़े हुए मुद्दे हैं। मनोरोग के रूप में उन्माद को महत्त्व देने वाले मनोविश्लेषक मातृमनोग्रंथि की पैदाइश के क्षण को कुछ ज़्यादा ही अहमियत देते हैं, जबकि खण्डित मनस्कता (स्किज़ोफ़्रेनिया) का विश्लेषण करने वालों की तरफ़ से इसे बहुत कम प्राथमिकता मिलती है।